मूल अवधारणाएं
[BASIC CONCEPTS]

1. पूंजी सिद्धान्त के तत्व
(ELEMENTS OF CAPITAL THEORY)

पूंजी उत्पादन का बहुत ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण क्रियात्मक साधन है। पूंजी की अनुपलब्धता तथा पूंजी निर्माण के अभाव में किसी देश के आर्थिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। **प्रो. कुजनेट्स** के शब्दों में, "पूंजी व पूंजी का संचय आर्थिक विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है।"

पूंजी से तात्पर्य मनुष्य द्वारा उत्पादित धन के उस भाग से है, जो अधिक धन के उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।

1. **प्रो. टॉमस** के शब्दों में, "पूंजी भूमि को छोड़कर व्यक्तिगत तथा सामूहिक धन का वह भाग है, जो और अधिक धन के उत्पादन में सहायक होता है।"

2. **प्रो. मार्शल** के अनुसार, "प्रकृति के समस्त निःशुल्क उपहारों के अतिरिक्त वह सब सम्पत्ति, जिससे आय प्राप्त होती है, पूंजी कहलाती है।"

3. **एडम स्मिथ** के अनुसार, "पूंजी व्यक्ति या समाज के संचित 'कोष का वह भाग है, जो उत्पादन में सक्रिय भाग लेता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से पूंजी के निम्नलिखित तीन प्रमुख तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं :

(i) पूंजी केवल मनुष्य द्वारा ही उत्पन्न या निर्मित की जाती है, प्रकृति द्वारा निर्मित नहीं होती।

(ii) केवल धन ही पूंजी होता है।

(iii) पूंजी का स्वरूप उसके उपयोग पर निर्भर करता है।

इस प्रकार, पूंजी के अन्तर्गत केवल नकद द्रव्य ही नहीं आता, बल्कि धन का वह भाग भी आता है, जो और अधिक धन के उत्पादन में सहायता करता है, जैसे—मशीनें, उपकरण, कच्चा माल, ट्रैक्टर, यातायात के साधन आदि पूंजी के रूप हैं।

पूंजी का सिद्धान्त (Theory of Capital)

पूंजी को उत्पादन का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन मानते हुए एडम स्मिथ ने मत व्यक्त किया कि श्रम विभाजन बहुत उपलब्ध पूंजी की मात्रा पर निर्भर करता है। **स्मिथ** ने पूंजी के **उदय, कार्य एवं भेद** पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

पूंजी के उदय के विषय में वह विचार व्यक्त करते हैं कि समाज की अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन आवश्यक पूंजी संचय से बनी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ एवं हित की रक्षा के लिए धन का संचय करता है। यह विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचित राशि ही एकत्रित होकर पूंजी की मात्रा में वृद्धि करती है। इस तरह, **स्मिथ** के अनुसार पूंजी की मात्रा मनुष्य की स्वाभाविक संचय की मनोवृत्ति पर आधारित है।

पूंजी का क्या कार्य है, इसको स्पष्ट करते हुए **एडम स्मिथ** ने कहा है कि पूंजी व्यक्ति या समाज के संचित कोष का वह भाग है, जो उत्पादन में सक्रिय भाग लेता है, पर किन-किन रूपों में लेता है? इसको

स्पष्ट करते हुए उन्होंने मत व्यक्त किया कि इसका प्रयोग कृषि, उद्योग-धन्धों एवं व्यापार में किया जाता है। व्यापार से उनका अभिप्राय सभी प्रकार के व्यापार—थोक, फुटकर, अंतर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय से है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों की भी धारणा है कि पूंजी ही किसी देश के सामाजिक, आर्थिक विकास एवं व्यापार का आधार है। पूंजी के अभाव में सामाजिक एवं आर्थिक विकास के गतिमान पहिए अवरुद्ध हो जाते हैं। **एडम स्मिथ** का विचार है कि पूंजी का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि किसी देश की सम्पत्ति की वृद्धि पूंजी के अभाव में सम्भव नहीं है। पूंजी के बढ़ने तथा प्रयोग से ही उद्योग-धन्धों का विकास होता है, श्रम विभाजन सम्पन्न होता है और लोगों का जीवन सुख-सम्पन्न बनता है।

पूंजी का वर्गीकरण करते हुए एडम स्मिथ ने कहा कि पूंजी दो प्रकार की होती है—(i) स्थिर या अचल पूंजी (Fixed Capital) तथा (ii) चल पूंजी (Circulating Capital)। अचल पूंजी से उनका अभिप्राय उस पूंजी से था, जो हस्तान्तरित नहीं की जा सकती। मकान इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। दूसरी ओर, वह पूंजी, जो हस्तान्तरित की जा सकती है, वह चल पूंजी कह कर पुकारी गई है। कच्चा माल, द्रव्य आदि इसका उदाहरण है।

पूंजी की मांग एवं पूर्ति (Demand and Supply of Capital)—पूंजी की मांग एवं पूर्ति के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए मार्शल ने बताया कि पूंजी का मांग मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा तथा पूर्ति मूल्य पूंजीपति के परिश्रम एवं त्याग द्वारा निर्धारित होता है।

पूंजी की मांग, मूल्य और पूर्ति मूल्य के विषय में निर्देश करने के उपरान्त मार्शल ने मत व्यक्त किया कि पूंजी के प्रयोग के बदले में जो मूल्य अथवा भाग राष्ट्रीय आय से दिया जाता है—ब्याज कहलाता है। मार्शल ने कहा कि ब्याज का निर्धारण पूंजी की मांग एवं पूर्ति की सापेक्ष शक्तियों द्वारा होता है। यदि अल्प समय में पूंजी की मांग पूंजी की पूर्ति से अधिक हो जाती है, तब ब्याज की दर भी बढ़ जाएगी, क्योंकि समय की कमी के कारण पूर्ति को बढ़ाना सम्भव नहीं हो सकेगा, परन्तु ज्यों ही समय बढ़ेगा, त्यों ही ब्याज दर पुनः सामान्य स्तर पर आ जाएगी, क्योंकि इस समय में पूर्ति को बढ़ने में पर्याप्त समय मिल जाएगा। इस तरह, पूंजी की मांग एवं पूर्ति ब्याज सापेक्ष होती है और मांग एवं पूर्ति में किसी तरह का विचलन होने पर ब्याज की दर उसमें बराबरी ला देगी।

2. बाह्यताएं
(EXTERNALITIES)

बाह्यता का अभिप्राय (Meaning of Externality)

बाह्यताओं से तात्पर्य "उन क्रियाओं से है जो दूसरों पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालती हैं और ये अन्य लोग इन क्रियाओं के लिए कोई भुगतान नहीं करते हैं या इनके बदले में उन्हें कोई मुआवजा नहीं मिलता है। बाह्यताओं का सृजन उस समय होता है जब निजी लागत या लाभ सामाजिक लागत या लागत के बराबर नहीं होते हैं। इनकी दो बड़ी उपजातियां बाह्य मितव्ययताएं और बाह्य अमितव्ययताएं हैं।"[1]

अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में लागत उत्पादन प्रक्रिया में लगे साधनों का मूल्य है। अवसर लागत (opportunity cost) सिद्धान्त के अनुसार मूल्य वह लाभ है जो इन साधनों द्वारा सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में प्राप्त होता है। (अवसर लागत किसी वस्तु के उत्पादन में लगे साधनों की लागत है जिसकी माप उस मूल्य के रूप में की जाती है जो सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में इनके उपयोग से प्राप्त होता है।) मान लें कि ट्रक निर्माण में लगे साधनों का सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग (best alternative use) टैंक का निर्माण है। अतः ट्रक की लागत टैंक का वह परिमाण है जिसका उत्पादन ट्रक निर्माण के कारण नहीं हो सका। निजी लागत (Private cost) सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगे उत्पादन के साधनों का वह मूल्य है जो उत्पादनकर्ता द्वारा लगाया जाता है। सामाजिक-लागत सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगे साधनों का वह मूल्य है जो सम्पूर्ण समाज को वहन करना पड़ता है।

[1] Externalities refer to "activities that affect others for better or worse, without those others paying or being compensated for the activity. Externalities exist when private costs or benefits do not equal social costs or benefits. Two major species are external economies and external diseconomies."
—*Somuelson* and *Nordhaus*

इस प्रकार निजी लागत निजी उत्पादनकर्ता को उपलब्ध साधनों के सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग की लागत है। सामाजिक लागत में निजी लागत के अतिरिक्त समाज को उपलब्ध सभी साधनों का सर्वोत्तम उपयोग की लागत शामिल होता है। सामाजिक तथा निजी लाभ में अन्तर बाह्यताओं के कारण होता है और यह अन्तर विनिमय की वह लागत या लाभ है जिसे समाज को वहन करना पड़ता है (लागत की स्थिति में) या समाज को प्राप्त होता है (लाभ की स्थिति में), किन्तु जिसे विनिमय में शामिल पक्ष अपने लेखा में नहीं गिनता है। बाह्यताओं को तृतीय पक्ष प्रभाव (Third Party effects) भी कहा जाता है, क्योंकि यह प्रभाव विनिमय के दो प्रमुख भागीदारों (उपभोक्ता तथा उत्पादनकर्ता) से भिन्न अन्य पक्षों पर पड़ता है। बाह्यताएं कई रूपों में उत्पन्न होती हैं जिनमें से कुछ हानिकारक होती हैं और कुछ लाभदायक।

लाभदायक बाह्यताएं उस समय उत्पन्न होती हैं जब उत्पादन की क्रिया से केवल उन्हीं को फायदा नहीं होता है, जो वस्तु के उपभोग के लए कीमत अदा करते हैं, बल्कि उन्हें भी जिनसे ऐसी कीमत नहीं ली जा सकती है। मान लें कि हमने अपने मकान का खूब अच्छी तरह पेन्ट किया जिससे पड़ोसियों को अच्छे लगते देखने को मिलते हैं तथा उनकी सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाता है। ऐसी बाह्यताओं का सृजन उस समय भी होता है जब किसी चित्रकार की पेन्टिंग की कीमत उस भुगतान से ज्यादा होती है जो चित्रकार को दिया जाता है। जब कभी ऐसी लाभदायक बाह्यताओं का सृजन होता है, फर्म द्वारा उत्पादित मात्रा सामाजिक सर्वोत्तम स्तर की उत्पत्ति से कम होती है। इसका कारण यह है कि फर्म तो सभी लागतों को वहन करती है जबकि अन्य लोगों को लाभ का एक हिस्सा प्राप्त होता है जिसके लिए वे भुगतान नहीं करते हैं।

हानिकारक बाह्यताओं का उस समय सृजन होता है; जैसे जब कारखाने धुआं छोड़ते हैं। कारखाने की क्रिया से पड़ोस में निवास एवं कार्य करने वाले व्यक्तियों को वास्तविक लागत वहन करनी होती है निम्न प्रकार से :

- धुएं के कारण उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा मेडिकल खर्च बढ़ जाता है,
- धुएं के कारण कपड़े अधिक गन्दे होते हैं तथा धोने का खर्च बढ़ जाता है।

जब कारखाने का मालिक उत्पादन करने का निर्णय लेता है, वह इन लागतों पर विचार नहीं करता है। ऐसी लागतें उसके लिए बाह्य हैं, किन्तु, समाज को वहन करनी पड़ती हैं। ये हानिकारक बाह्यताओं के उदाहरण हैं जो उत्पादनकर्ता ऐसी बाह्यताओं का सृजन करता है, वह वस्तु का उत्पादन सामाजिक इष्टतम स्तर (socially optimal level) से अधिक मात्रा में करता है।

बाह्यताएं चाहे हानिकारक हों या लाभदायक, बाजार की विफलताओं के कारण हैं, क्योंकि इनके वजह से सीमान्त निजी राजस्व (Marginal private revenue) सीमान्त सामाजिक लागत से भिन्न होता है और इसलिए उत्पत्ति सामाजिक इष्टतम स्तर से भिन्न होती है।

बाह्यताओं की विशेषताएं

बाह्यताओं की निम्न विशेषताएं हैं :

(i) बाह्यताओं का सृजन उपभोक्ताओं एवं फर्मों के द्वारा होता है। फर्मों के द्वारा बाह्यताओं के सृजन का उदाहरण ऊपर दिया गया कारखानों के धुआं के माध्यम से। उपभोक्ता द्वारा इसके सृजन का एक उदाहरण लें। मान लें कि भीड़ भरे कमरे में कोई व्यक्ति सिगरेट पीता है। ऐसा करके वह एक कामन संसाधन, शुद्ध वायु, का उपयोग करके अन्य व्यक्तियों के कल्याण को कम करता है।

(ii) बाह्यताएं पारस्परिक (reciprocal) होती हैं। मान लें कि अशोक अपने कारखाने का कूड़ा-कचरा बगल की नदी में डाल देता है। इस प्रकार वह नदी के जल को प्रदूषित करता है। अब मान लें कि भीम इस नदी की मछली को पकड़ कर अपनी जीविका चलाता है। अशोक की क्रिया का भीम पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और उसके कल्याण में ह्रास होता है। यह भी सम्भव है कि भीम अन्य मछुओं के साथ मछली पकड़कर नदी के जल को प्रदूषित करता है तथा अशोक के कूड़ा-कचरा फेंकने की सामाजिक लागत को बढ़ा देता है।

(iii) बाह्यताएं धनात्मक (positive) या ऋणात्मक (negative) हो सकती हैं। यदि मैं कीड़ों से रक्षा के लिए अपने पेड़ों का छिड़काव करता हूं, तो मेरी क्रिया से मेरे पड़ोसियों को भी प्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है। पड़ोसियों से इस लाभ के लिए कोई कीमत लेना सम्भव नहीं होता है। यह धनात्मक (लाभदायक) बाह्यता का उदाहरण है। सिजविक (Sigwick) का प्रकाश स्तम्भ भी इसी धनात्मक बाह्यता का उदाहरण है।

पीगू ने कारखाने की चिमनी से निकलने वाले धुएं का जो उदाहरण दिया है उससे आस-पास में रहने वाले को कपड़ों की धुलाई तथा दवाइयों पर अधिक खर्च करना पड़ता है और इस खर्च के लिए मिल मालिक को सहायता नहीं कर सकता है अर्थात् इसका भुगतान नहीं करता है। यह ऋणात्मक बाह्यताओं का उदाहरण है

(iv) लोक वस्तु एक विशेष प्रकार की बाह्यता है। जब कोई व्यक्ति किसी धनात्मक बाह्यता का सृजन करता है और इसका पूरा प्रभाव अर्थव्यवस्था के प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है, यह बाह्यता शुद्ध लोक वस्तु है लोक वस्तु एक विशेष प्रकार की बाह्यता है, वह बाह्यता जिसका असर सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है। ऊपर दिए गए उस उदाहरण को लें जिसमें पेड़ पर दवा के छिड़काव की बात कही गई। यदि मेरे द्वारा दवा के छिड़काव से सम्पूर्ण समाज से कीड़ों का सफाया हो जाता है, तो मेरे द्वारा एक लोक वस्तु का सृजन हुआ है, किन्तु यदि मेरी क्रिया केवल कुछ पड़ोसियों को ही प्रभावित करती है, तो यह एक बाह्यता है। औपचारिक दृष्टिकोण से धनात्मक बाह्यताएं तथा लोक वस्तुएं मिलते-जुलते (similar) हैं, किन्तु व्यवहार में दोनों में अन्तर करना उपयोगी होगा। कभी-कभी यह अन्तर धुंधला या अस्पष्ट रहता है।

बाह्यताओं का समाधान (Remedial Actions)

बाह्यताओं के कारण साधनों का कार्यक्षम आबण्टन (efficient allocation) नहीं हो पाता है। इसलिए कार्यक्षम आबण्टन को पाने के लिए कुछ समाधान की आवश्यकता होती है।

(i) **विलय** (Merger)—बाह्यता के कारण खड़ी होने वाली समस्या के समाधान का एक तरीका संलग्न पार्टियों को संयुक्त करके बाह्यता को आन्तरिक बना देना है। इसके लिए या तो अशोक (ऊपर दिए गए उदाहरण में) भीम के मछली पकड़ने वाले फर्म को खरीद ले या भीम अशोक के फर्म को खरीद ले या कोई तीसरा फर्म इन दोनों फर्मों को खरीद ले। ऐसे विलय (merger) से बाह्यता आन्तरिक हो जाती है—बाह्यता का सृजन करने वाली पार्टी इसे अपने लेखा (account) में शामिल कर लेती है।

(ii) **सामाजिक रीति-रिवाज** (Social convention)—फर्मों की तरह व्यक्तियों का विलय बाह्यता को आन्तरिक बनाने के लिए नहीं हो सकता है, किन्तु कुछ सामाजिक रीति-रिवाज ऐसे होते हैं जो लोगों को बाह्यता के विषय में सोचने के लिए बाध्य पर सकते हैं जिसका सृजन वे खुद करते हैं। बच्चों द्वारा स्कूल के मैदान गन्दे हो जाते हैं जब वे खाने के पैकेटों को इधर-उधर फेंक देते हैं। इसे साफ करने की लागत समाज (स्कूल इस उदाहरण में) को वहन करनी पड़ती है, लेकिन बच्चों को ऐसा सिखाया जा सकता है कि वे अपने साथ पोलीथिन पैकेट रखें जिसमें खाली पैकेट एवं ऐसी रद्दियों को रख लें तथा उसे कूड़ादान में फेंक दें। ऐसा करने की लागत स्कूल द्वारा सफाई की लागत से कम ही होगी तथा उस ओर होकर गुजरने वाले लोग तथा मैदान में टहलने वाले इधर-उधर बिखरे कूड़े-कचरे द्वारा उपस्थित बदसूरत दृश्य को देखने से बच जाएंगे।

(iii) **कर** (Tax) **एवं सब्सिडी** (Subsidy)—बाह्यताओं, इनका सृजन चाहे उत्पादन में हो या उपभोग में, की प्रमुख विशेषता यह है कि उनकी लागत या लाभ बाजार कीमतों में प्रतिबिम्बित नहीं होती है। उपभोक्ता या फर्म इनके प्रभावों का लेखा-जोखा नहीं रखते। इसलिए पीगू (A. C. Pigou) के समय से अर्थशास्त्रियों ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि बाह्य प्रभावों को लेखा में शामिल करके यदि उपभोग उत्पादन सम्बन्धी निजी निर्णयों को संशोधित किया जाए तो सामाजिक कल्याण में वृद्धि सम्भव है। इसके लि कल्याण में कमी या लागत में वृद्धि करने वाली क्रियाओं पर कर लगाना चाहिए तथा उन क्रियाओं को आर्थि सहायता (subsidy) देनी चाहिए जिनसे कल्याण में वृद्धि होती है या लागत में कमी होती है।

व्यवहार में कर-सब्सिडी स्कीम को कदाचित ही अपनाया जाता है। सीमान्त हानि या लाभ को माप तथा कर या सब्सिडी की सही दर की जानकारी प्राप्त करने में कठिनाई होती है। साथ ही ऐसी जानकारी प्राप्ति भी कठिन कार्य है कि प्रदूषण फैलाने वाला कौन है तथा कितनी मात्रा में यह फैलाया जा रहा है।

(iv) बाजार का सृजन (Creating a market), सम्पत्ति के अधिकार की स्थापना (Establishin property rights) तथा नियमन (regulation) के द्वारा भी बाह्यता की समस्या का समाधान सम्भव है।

निष्कर्ष

बाह्यता की स्थिति में कार्यसक्षमता (efficiency) की प्राप्ति के लिए कुछ प्रकार के हस्तक्षेप की जरूरत है, किन्तु उन्हें लागू करने में अनेक तकनीकी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कोई भी नीति पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हो सकती है। अधिकांश अर्थशास्त्रियों का कहना है कि सभी उपलब्ध वैकल्पिक नीतियों में पीगू के कर (Pigovian taxes) या बाजार का सृजन अन्य विकल्पों की तुलना में अधिक प्रभावी है।

सार्वजनिक (या लोक) वस्तुएं
(PUBLIC GOODS)

सार्वजनिक या लोक वस्तु की अवधारणा (Concept of Public Goods)

लोक वस्तुएं सार्वजनिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करती हैं। सार्वजनिक वस्तुएं जिन्हें सामाजिक वस्तुएं भी कहा जाता है। सभी व्यक्ति समान मात्रा में उपभोग करते हैं व उनके लाभ से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है अर्थात् इनकी उपलब्धि के सम्बन्ध में कोई भेद-भाव नहीं बरता जाता है। जो व्यक्ति इन वस्तुओं के लिए भुगतान करते हैं अथवा जो भुगतान नहीं करते, यह वस्तुएं सभी की आवश्यकता की संतुष्टि करती हैं। सड़क, रेल, पुल, सुरक्षा-सेवाएं आदि ऐसी विशुद्ध सामाजिक वस्तुएं हैं, जिनके उपभोग का बंटवारा नहीं किया जा सकता तथा इनकी पूर्ति समाज के सभी लोगों के लिए समान रूप से उपलब्ध होती है। इन वस्तुओं का संयुक्त उपभोग होता है तथा इनके सम्बन्ध में अपवर्जन सिद्धान्त (Exclusion Principle) लागू नहीं होता है। इन वस्तुओं को हिस्सों में विभाजित नहीं किया जा सकता तथा इनकी पूर्ति भी आंशिक रूप से बढ़ाई या घटाई नहीं जा सकती है। चूंकि सामाजिक वस्तुओं के संदर्भ में अपवर्जन सिद्धान्त लागू नहीं होता व वे सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध होती हैं तथा व्यक्ति इनके प्रति अपना अधिमान नहीं व्यक्त कर सकता है, अतः कीमत प्रणाली द्वारा इन वस्तुओं को बाजार में खरीदा अथवा बेचा नहीं जा सकता है। इस तरह, सरकार द्वारा बजट में आवश्यक व्यवस्था करके सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति की जाती है।

सार्वजनिक वस्तु को परिभाषित करते हुए **प्रो. सैम्युलसन** ने लिखा है कि, "यह एक ऐसी वस्तु है, जिसका सभी लोग मिलकर इस अर्थ में आनंद प्राप्त करते हैं कि किसी एक व्यक्ति के उपभोग में वृद्धि, किसी अन्य व्यक्ति के उपभोग में कमी लाए बिना होती है।"

प्रो. मसग्रेव के अनुसार, सभी सार्वजनिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाली वस्तुएं सार्वजनिक या सामाजिक वस्तुएं होती हैं, इनकी पूर्ति सरकार द्वारा की जानी चाहिए। उनके अनुसार, "निजी आवश्यकता की व्यवस्था पर्याप्त रूप से बाजार द्वारा हो जाती है। सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि बजट द्वारा ही होनी चाहिए, उनकी संतुष्टि नितांत आवश्यक है।"

स्पष्टतया, सार्वजनिक अथवा सामाजिक वस्तुएं वे हैं जिनके उत्पादन से बाह्य लाभ का सृजन होता है तथा यह लाभ समाज के लोगों में बिखर जाता है। ऐसे लाभ का स्पष्ट विभाजन संभव नहीं है, अतः ऐसी वस्तुओं के लिए कीमत निर्धारित नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप इन वस्तुओं के उपभोग से उन व्यक्तियों को भी वंचित नहीं किया जा सकता, जो इसके लिए कीमत का भुगतान नहीं करते।

निजी वस्तु—निजी वस्तुएं वे हैं, जिन्हें कीमत प्रणाली अथवा बाजार व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। निजी वस्तुओं का उत्पादन बाजार सिद्धान्त तथा व्यावसायिक दक्षता के आधार पर किया जाता है। उपभोक्ता उनके प्रति अपना अधिमान कीमत के रूप में व्यक्त करता है। निजी वस्तुएं विभाज्य होती हैं, अतः उन्हें बाजार में मूल्य पर खरीदा अथवा बेचा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को जो किसी वस्तु की कीमत का भुगतान करने में असमर्थ रहता है, उसे उस वस्तु के उपभोग से वंचित रहना पड़ेगा। इस तरह, निजी वस्तुओं के संदर्भ में अपवर्जन सिद्धान्त लागू होता है। शुद्ध सामाजिक वस्तुओं का उपभोग प्रतिद्वंद्विता रहित होता है, क्योंकि किसी उपभोक्ता के उपभोग में वृद्धि दूसरे के उपभोग में कमी नहीं लाएगा, जबकि शुद्ध व्यक्तिगत वस्तुओं का उपभोग प्रतिद्वंद्विता युक्त होगा, क्योंकि एक के उपभोग में वृद्धि दूसरे के उपभोग में कमी लाएगी। जिन व्यक्तियों में निजी वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता होती है, वही उनका उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं।

सार्वजनिक (सामाजिक) वस्तु तथा निजी वस्तु के अंतर को निम्न रेखाचित्रों 3.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है :

हम जानते हैं कि व्यक्तिगत वस्तुओं का उपभोग प्रतिस्पर्द्धात्मक होता है अर्थात् एक उपभोक्ता के उपभोग में हुई वृद्धि दूसरे के उपभोग को कम कर देती है। मान लिया किसी शुद्ध व्यक्तिगत वस्तु की कुल बाजार मात्रा M है। इस वस्तु के A तथा B दो उपभोक्ता हैं। यदि उपभोक्ता A का उपभोग M_A तथा उपभोक्ता B का उपभोग M_B है, तब

$$M = M_A + M_B$$

कुल उपभोग की दशा में, यदि उपभोक्ता A, वस्तु M की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा का उपभोग करता है, तो उपभोक्ता B को आवश्यक रूप से M वस्तु की अपेक्षाकृत कम मात्रा का उपभोग करना होगा। अर्थात्

$$M_A > M_B$$

दोनों के उपभोग में प्रतियोगिता होगी। यदि उपभोक्ता B, अपना उपभोग कुछ बढ़ाने का प्रयास करेगा, तो उपभोक्ता A के उपभोग में तद्नुरूप कमी आएगी। इसे एक और सरल उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए वस्तु M की पूर्ति 100 इकाई के बराबर है। यदि उपभोक्ता A वस्तु की 75 इकाइयों का उपभोग करता है, तो B के उपभोग के लिए 25 इकाइयां शेष बचती हैं। अब यदि उपभोक्ता B अपना उपभोग बढ़ाकर 30 इकाइयां कर देता है, तो A का उपभोग आवश्यक रूप से 70 इकाइयों के बराबर होगा। यदि कोई उपभोक्ता वस्तु M के लिए कीमत का भुगतान नहीं करता, तो उसे उस वस्तु के उपभोग से वंचित रहना पड़ेगा।

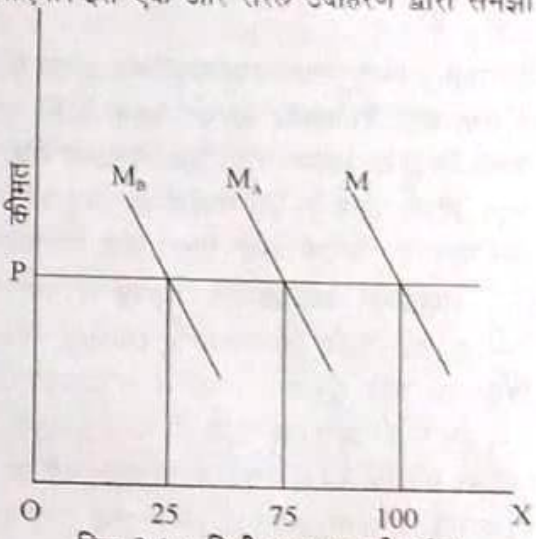

चित्र 3.1 : निजी वस्तु M की मांग

इस तरह, निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में बाजार मांग वक्र एक निश्चित मूल्य पर A तथा B के मांग वक्र का क्षैतिज योग होगा अर्थात् $M = M_A + M_B$। इसे संलग्न चित्र 3.1 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :

चित्र से स्पष्ट है कि निजी वस्तु का कुल उत्पादन M = 100 है। OP कीमत पर उपभोक्ता B की मांग M_B अर्थात् 25 है, जबकि उपभोक्ता A की मांग M_A अर्थात् 75 है। इस तरह, OP कीमत पर कुल मांग $M_A + M_B = 75 + 25 = 100 = M$ होगी।

मांग वक्र (Demand Curve) M_A तथा M_B को क्षैतिज रूप से जोड़कर (Horizontal Summation) मांग वक्र M को निर्मित किया गया है।

सार्वजनिक अथवा सामाजिक वस्तु का उपभोग करने के लिए सभी को सामान अवसर प्रदान किया जाता है, इसमें अपवर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता तथा कुल उपभोग का बंटवारा नहीं होता। मान लीजिए, सार्वजनिक वस्तु की कुल मात्रा Z है, जिसमें से A उपभोक्ता का उपभोग Z_A तथा B उपभोक्ता का उपभोग Z_B है। चूंकि दोनों उपभोक्ताओं के मध्य उपभोग के सम्बन्ध में किसी तरह की प्रतिद्वंद्विता नहीं है और सभी वस्तु को समान रूप से उपभोग करते हैं अतः यह कहा जा सकता है कि $Z = Z_A = Z_B$

यदि यह मान लिया जाए कि Z सार्वजनिक वस्तु का कुल उत्पादन 100 है, तो हम उपर्युक्त को इस तरह व्यक्त कर सकते हैं :

$$Z = Z_A = Z_B$$

या, $100 = 100 = 100$

इस तरह, हम देखते हैं कि उपभोक्ता A तथा उपभोक्ता B दोनों के लिए Z की मांग 100 ही है। स्पष्टतया अपवर्जन सिद्धान्त के लागू न होने के कारण शुद्ध सार्वजनिक वस्तु के मांग वक्र Z को वक्र

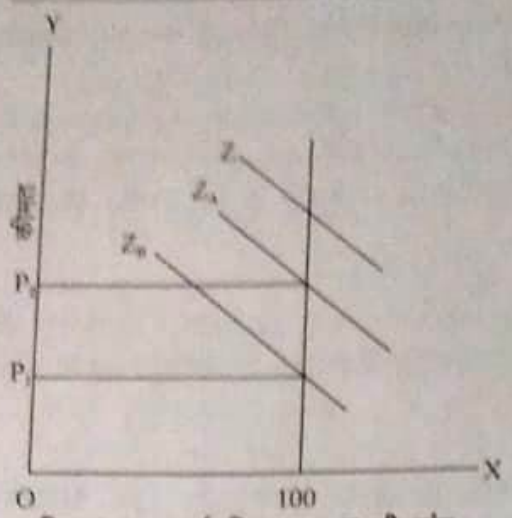

चित्र 3.2 : सार्वजनिक वस्तु Z की मांग

Z_A तथा Z_B के ऊर्ध्वाधर योग (Vertical Summation) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि संलग्न चित्र 3.2 द्वारा प्रदर्शित किया गया है—

चित्र 3.2 से स्पष्ट है कि $Z_B = Z_A = Z = 100$

इस तरह, सार्वजनिक वस्तु तथा निजी वस्तु की अवधारणाओं के आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि दोनों में पर्याप्त अंतर है। फिर भी जैसा कि **मसग्रेव** ने इंगित किया है कि निजी तथा सार्वजनिक अथवा सामाजिक वस्तुओं के मध्य भेद स्पष्ट करना सहज नहीं है। दोनों तरह की वस्तुओं में निरपेक्ष अंतर नहीं किया जा सकता। जब बाजार प्रणाली के माध्यम से निजी आवश्यकताओं की संतुष्टि में बाधाएं उत्पन्न होती है, तो यह कहा जा सकता है कि सामाजिक आवश्यकता का तत्व विद्यमान है। मौलिक अंतर यह है कि निजी वस्तुओं के संदर्भ में निजी लागत तथा सामाजिक लागत में कोई अंतर नहीं होता, जबकि सामाजिक वस्तुओं के संदर्भ में ऐसा होता है। **मसग्रेव** का यह कहना है कि कुछ सामाजिक आवश्यकताएं सीमा रेखा पर हो सकती हैं जैसे—निःशुल्क स्वास्थ्य एवं शिक्षा सम्बन्धी सेवाएं। इस तरह, यदि किसी वस्तु में सार्वजनिकता का तत्व बहुत अधिक होता है, उसे सार्वजनिक वस्तु कहा जाता है, इसके विपरीत जब सार्वजनिकता का तत्व बहुत कम रहता है, तो उसे निजी वस्तुएं कहा जा सकता है।

सामाजिक आवश्यकताएं—मसग्रेव ने सार्वजनिक आवश्यकताओं को दो भागों में विभाजित किया है—(क) सामाजिक आवश्यकताएं (Social Wants) तथा (ख) गुणों पर आधारित आवश्यकताएं (Merit Wants)। उनके अनुसार, सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति व्यक्ति अपना सही अधिमान व्यक्त नहीं करते हैं तथा इन्हें निजी आवश्यकताओं की भांति इकाइयों अथवा हिस्सों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। इनकी पूर्ति भी आंशिक रूप से घटाई अथवा बढ़ाई नहीं जा सकती है। ये आवश्यकताएं भारी मात्रा में ही प्रदान की जाती हैं। सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि सभी नागरिकों के लिए एक साथ होती है। इन आवश्यकताओं में उपभोग की प्रवृत्ति सामूहिक होती है। ये आवश्यकताएं सामूहिक उपभोग को व्यक्त करती हैं।

सामाजिक आवश्यकताओं के प्रमुख तीन लक्षण निम्नवत् हैं :

(अ) सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में अपवर्जन सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता।

(ब) इनसे समाज के सभी व्यक्तियों को समान लाभ प्राप्त होता है।

(स) इनकी संतुष्टि बजट के माध्यम से अनिवार्य भुगतान द्वारा की जा सकती है।

उपर्युक्त प्रथम दो लक्षणों के कारण ही उपभोक्ता अपना अधिमान व्यक्त नहीं कर पाते हैं। इन आवश्यकताओं के प्रति उपभोक्ताओं का सही अधिमान अभिव्यक्त कराने का कार्य लोकवित्त द्वारा सम्पन्न कराया जाना आवश्यक होता है।

इस तरह, जिन वस्तुओं के उत्पादन अथवा उपभोग से सम्पूर्ण समाज के कल्याण में वृद्धि होती है तथा ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं का लाभ समस्त नागरिकों को प्राप्त होता है, तो उनको सार्वजनिक वस्तुएं एवं सेवाएं कहेंगे। इन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में धन की व्यवस्था सामान्य बजट द्वारा की जानी चाहिए। बाह्य आक्रमण से सुरक्षा करना सामाजिक आवश्यकता का एक अच्छा उदाहरण है। इसके सम्बन्ध में सामाजिक आवश्यकताओं के तीनों लक्षण सही उतरते हैं। सीमा पर तैनात सेना द्वारा सम्पूर्ण देश की सुरक्षा की जाती है। सुरक्षा के इस लाभ से देश के सभी व्यक्ति लाभान्वित होते हैं चाहे उन्होंने सुरक्षा के प्रति, अपने अंशदान का भुगतान किया हो अथवा नहीं। यह जानते हुए कि अंशदान का भुगतान न करने पर भी सुरक्षा का लाभ तो मिलता ही रहेगा, लोग अपना अधिमान व्यक्त नहीं करते। साथ ही सुरक्षा से सभी नागरिकों को समान लाभ प्राप्त होता है। ऐसा नहीं है कि किसी को अधिक सुरक्षा प्राप्त होती है व किसी को कम। चूंकि देश

की सुरक्षा एक अति महत्वपूर्ण आवश्यकता है, अतः इस कार्य को राज्य को बजट के माध्यम से ही करना होगा तथा लोगों से राज्य की सुरक्षा के लिए अनिवार्य अंशदान लेना होगा।

सामाजिक आवश्यकताओं तथा निजी आवश्यकताओं में उपभोग की मात्रा व अधिमान अभिव्यक्ति के आधार पर जो अंतर पाया जाता है उसे संलग्न चित्र 3.3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

चित्र में OX-अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत को प्रदर्शित किया गया है। इस विश्लेषण में मान लिया गया है कि उपभोक्ताओं की संख्या दो है। दोनों उपभोक्ताओं को किसी निजी वस्तु के उपभोग से जो सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है, उसे क्रमशः U_1 तथा U_2 वक्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। U वक्र दोनों उपभोक्ताओं के संयुक्त उपभोग से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को प्रदर्शित करता है। Pp रेखा निजी वस्तु की कीमत को दर्शाती है। इस दशा में पहला उपभोक्ता वस्तु की OQ_1 मात्रा का उपभोग करेगा तथा उसके लिए OQ_1q_1P राशि का भुगतान करेगा। इसी तरह, दूसरा उपभोक्ता वस्तु की OQ_2 मात्रा का उपभोग करेगा तथा OQ_2q_2P राशि का भुगतान करेगा। दोनों उपभोक्ता मिलकर OQ मात्रा का उपभोग करेंगे तथा OQqP राशि का भुगतान करेंगे। इस तरह, $OQ_1 + OQ_2 = OQ$ तथा $OQ_1q_1P + OQ_2q_2P = OqP$। चित्र से स्पष्ट है कि दोनों व्यक्ति समान कीमत पर वस्तु की विभिन्न मात्राओं का उपयोग कर संतुलन की स्थिति में हैं, क्योंकि दोनों व्यक्तियों के संबंध में सीमांत उपयोगिता तथा कीमत बराबर है। यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रथम व्यक्ति की अपेक्षा दूसरे व्यक्ति की वस्तु के उपभोग की आकांक्षा अधिक है, क्योंकि प्रथम व्यक्ति के सीमांत उपयोगिता वक्र का स्तर दूसरे व्यक्ति के सीमांत उपयोगिता वक्र के स्तर से नीचा है। अतः दूसरे व्यक्ति का उपभोग भी प्रथम व्यक्ति से अधिक है तथा वह इसके लिए धनराशि का भुगतान भी प्रथम व्यक्ति की तुलना में अधिक करता है।

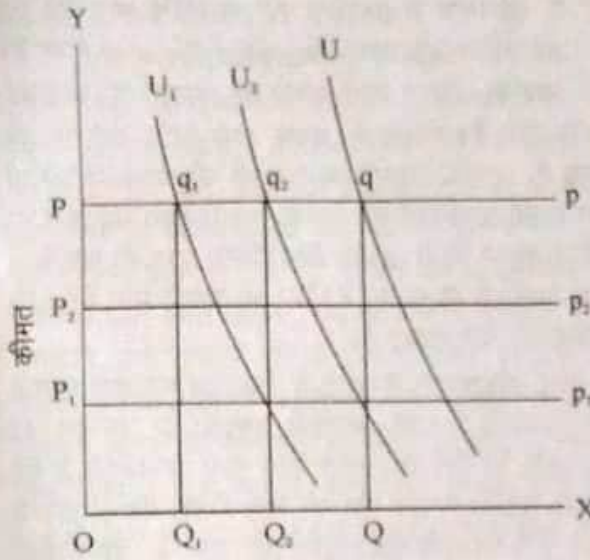

चित्र 3.3 : वस्तु की मात्रा

सामाजिक वस्तुओं के संदर्भ में इस तरह का विश्लेषण संभव नहीं है, क्योंकि निजी वस्तुओं के विपरीत इन वस्तुओं का उपभोग सभी व्यक्ति समान रूप से करते हैं। चित्र 3.3 में यदि यह मान लिया जाए कि सामाजिक वस्तु की मात्रा OQ है, जिसे OQqP राशि का भुगतान करके प्राप्त किया जा सकता है। u वक्र संयुक्त सीमांत उपयोगिता वक्र है। यदि वस्तु की OQ मात्रा का उत्पादन होता है, तो दोनों ही व्यक्तियों को कीमत से कम सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी, क्योंकि $u_1 < P$ तथा $u_2 < P>$ यदि उत्पादन OQ_1 के बराबर किया जाता है, तो $u_2 > P$ तथा यदि उत्पादन OQ_2 किया जाता है, तो $u_1 < P$। अतः वस्तु की कोई भी मात्रा उत्पन्न की जाए, उपभोक्ता संतुलन की स्थिति नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि व्यक्तियों के सीमांत उपयोगिता वक्र भिन्न-भिन्न हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में संतुलन समान कीमत पर विभिन्न मात्राओं के उपभोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, तो सामाजिक वस्तुओं के सम्बन्ध में संतुलन समान मात्रा में उपभोग को भिन्न-भिन्न कीमतों पर प्रदान करके क्यों नहीं प्राप्त किया जा सकता? चित्र में सामाजिक वस्तु की OQ मात्रा का उत्पादन होता है, जिसके लिए कुल OQqP राशि का भुगतान किया जाना है जिसमें से $OQ_1q_1P_1$ प्रथम व्यक्ति द्वारा तथा $OQ_2q_2P_2$ दूसरे व्यक्ति द्वारा भुगतान किया जाना चाहिए ($OQqP = OQ_1q_1P_1 + OQ_2q_2P_2$)। इस प्रकार, सीमांत उपयोगिता तथा कीमत में साम्य होने के कारण संतुलन प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि उपभोक्ता सार्वजनिक वस्तु का उपभोग बिना अपना अधिमान व्यक्त किए व बिना सीमांत उपयोगिता अनुसूची के बनाए कर सकता है। अतः यह व्यवस्था भी सामाजिक वस्तुओं के लिए साधन आवंटित कराने में सफल नहीं हो सकती।

गुणाधारित (अथवा योग्य अथवा उत्कृष्ट अथवा मेरिट) आवश्यकताएं (Merit-Wants)—गुणाधारित आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त करते हुए **मसग्रेव** स्पष्ट करते हैं कि सरकार जिन वस्तुओं के उपभोग को जनहित में बढ़ाना आवश्यक समझती है, उनको गुणाधारित अथवा मेरिट वस्तुएं कहते हैं और ये वस्तुएं जिन आवश्यकताओं की संतुष्टि करती हैं, उनको गुणाधारित अथवा मेरिट आवश्यकताएं कहते हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, अल्प लागत की आवासीय व्यवस्था, राशनिंग व्यवस्था के अंतर्गत दिया जाने वाला अनाज आदि मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था, सामाजिक अथवा सार्वजनिक वस्तुओं की तरह बजट से की जाती है, परन्तु इनकी व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान को ध्यान में नहीं रखा जाता। अन्य शब्दों में, मेरिट वस्तुओं की पूर्ति उपभोक्ताओं के अधिमान में हस्तक्षेप पर आधारित होती है। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता अधिमान के स्थान पर 'प्रत्यारोपित अधिमान' (Imposed Choice) होता है। यथा—मुफ्त या कम दाम पर की जाने वाली राशन की व्यवस्था अथवा अल्प लागत पर आवास की व्यवस्था समाज के कुछ वर्गों के लिए वांछित अथवा आवश्यक होती है। स्पष्टतया, बजट द्वारा मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था समाज के किसी खास वर्ग के लिए की जाती है, जबकि सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को ध्यान में रखकर की जाती है। मेरिट वस्तुएं इसके प्राप्तकर्ता को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाती ही हैं, साथ ही सामूहिक लाभ का भी सृजन करती हैं। मेरिट वस्तुएं निजी अथवा सार्वजनिक वस्तु हो सकती है तथा जिनकी मांग तथा पूर्ति का निर्धारण व्यक्तिगत अधिमानों से हो सकता है। फिर भी इनकी मांग एवं पूर्ति को समाज, सरकार अथवा संस्थाओं के अधिमान भी प्रभावित कर सकते हैं।

सरकार जिन वस्तुओं के उपभोग को समाज के लिए हानिकारक समझती है तथा उन पर रोक लगाती है, उन वस्तुओं को गैर उत्कृष्ट अथवा गैर-मैरिट वस्तुएं कहते हैं यथा—नशीली वस्तुओं के उपभोग को नियंत्रित करने के लिए सरकार इन वस्तुओं पर कर लगाती है। यहां एक बात जान लेना आवश्यक है कि मेरिट आवश्यकताओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि समान स्तर पर नहीं होती। यह अवश्य है कि दोनों सार्वजनिक आवश्यकताएं हैं, क्योंकि दोनों की पूर्ति सरकारी बजट द्वारा की जाती है, परन्तु दोनों वस्तुओं द्वारा प्रदत्त संतुष्टि में अलग-अलग सिद्धान्त लागू होते हैं। सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि उपभोक्ता की सार्वभौमिकता के अंतर्गत आती है जैसा कि निजी आवश्यकताओं की संतुष्टि के संदर्भ में होता है, परन्तु मेरिट आवश्यकताओं की संतुष्टि के संदर्भ में उपभोक्ताओं की अभिरुचियों में हस्तक्षेप किया जाता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक आवश्यकताएं अपवर्जन, अविभाज्यता तथा प्रतिद्वंद्वित विहीन शर्तों को संतुष्ट करती हैं, जबकि मेरिट आवश्यकताओं के संदर्भ में ऐसा होना आवश्यक नहीं है।

सामाजिक तथा गुणाधारित (मेरिट) आवश्यकताओं में अंतर—सामाजिक तथा गुणाधारित आवश्यकताओं में निम्नलिखित मूलभूत अंतर पाया जाता है :

1. सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि व्यक्तिगत अधिमानों पर निर्भर होती है, जबकि गुणाधारित आवश्यकताओं की संतुष्टि सरकार की नीतियों पर आधारित होती है।

2. सामाजिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अपवर्जन सिद्धान्त नहीं लागू होता, जबकि गुणाधारित आवश्यकताओं के सम्बन्ध में यह लागू होता है।

3. सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा सबको समान मात्रा में संतुष्टि मिलती है, जबकि गुणाधारित आवश्यकताओं में संतुष्टि की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है।

4. सामाजिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की सम्प्रभुता को महत्व प्रदान किया जाता है, जबकि गुणाधारित आवश्यकताओं के सम्बन्ध में निर्णय किसी वर्ग विशेष द्वारा लिया जाता है।

5. सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि सार्वजनिक बजट के माध्यम से ही की जा सकती है, जबकि गुणाधारित आवश्यकताओं की संतुष्टि सार्वजनिक बजट के साथ-साथ कीमत द्वारा भी संभव है।

मिश्रित आवश्यकताएं—कुछ सामाजिक आवश्यकताएं ऐसी होती हैं, जो व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक आवश्यकताओं की सीमा रेखा के बीच होती हैं, क्योंकि इनकी संतुष्टि से प्राप्त होने वाले कुछ लाभों पर अपवर्जन सिद्धान्त लागू होता है, जैसे—निःशुल्क शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएं। इन सेवाओं से कुछ व्यक्तियों को तो तुरंत लाभ पहुंचता है, जबकि समाज के सभी नागरिकों को अप्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि वे अधिक स्वस्थ एवं शिक्षित वातावरण में निवास करने लगते हैं। चेचक का टीका लगवाने से उस व्यक्ति को तो लाभ प्राप्त होता ही है जो टीका लगवाता है, साथ ही इससे दूसरों को भी लाभ पहुंचता है, क्योंकि इससे छूत की

इस तरह, संसाधनों की नव्यकरणीयता लम्बे समय तक संसाधनों की आपूर्ति सुनिश्चित करती है। अनव्यकरणीयता संसाधनों की समाप्यता को सूचित करती है और तर्कसंगत तथा युक्तिसंगत उपभोग की ओर संकेत करती है।

5. सामान्य स्वामित्व संसाधन
(COMMON PROPERTY RESOURCES)

सामान्य स्वामित्व संसाधन सर्व समाज की आवश्यकता की पूर्ति, कार्य सिद्ध अथवा लाभ प्रदान करने की क्षमता प्रदान करने वाले संसाधन होते हैं। इन संसाधनों पर समाज के सभी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। अत: इनका उपयोग सभी व्यक्ति करते हैं। उनके लाभ से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है अर्थात् इनकी उपलब्धता के सम्बन्ध में भेद-भाव नहीं बरता जाता है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल संसाधन की प्राप्ति तथा वन, चरागाह व भूमि आदि संसाधनों का प्रयोग सर्वसाधारण द्वारा बिना किसी प्रतिबन्ध के किसी-न-किसी रूप में किया जा सकता है। इन संसाधनों का उपयोग समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है तथा इनके सम्बन्ध में अपवर्जन सिद्धान्त (Exclusion Principle) लागू नहीं होता। ये संसाधन सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध होते हैं।

सामान्य स्वामित्व संसाधन ऐसे संसाधन हैं, जिनका सभी लोग इस तरह उपयोग कर आनन्द प्राप्त करते हैं कि किसी एक व्यक्ति के उपभोग में वृद्धि, किसी अन्य व्यक्ति के उपभोग में कमी लाए बिना होती है।

उदाहरण के लिए—सौर ऊर्जा का उपयोग अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप सभी व्यक्तियों द्वारा बिना किसी भेद-भाव के किया जा सकता है। इसी तरह, वायु सार्व स्वामित्व संसाधन है, जिसका उपयोग ऊर्जा (पवन ऊर्जा) तथा अन्य रूपों में उपयोग का सबको समान अधिकार है। वन एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है। वन समस्त जीवों के लिए प्राण वायु (ऑक्सीजन) के संचित कोष हैं। पादप प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बन डाइ ऑक्साइड को अवशोषित कर ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। वनों के कारण हमारे वायुमण्डल में ऑक्सीजन का वांछित स्तर बना रहता है। वन वर्षा को आकर्षित करते हैं। नदियों को अनुशासित रखते हैं, बाढ़ों को नियन्त्रित करते हैं, पशु-पक्षियों का पोषण करते हैं, मृदा अपरदन रोकते हैं। वन समाज के लिए आर्थिक व पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इस तरह, वन संसाधनों का लाभ समाज के सभी व्यक्तियों को प्राप्त होता है।

इसी तरह, जल प्रकृति प्रदत्त एक सामान्य स्वामित्व संसाधन है। यह भूतल पर पाए जाने वाले समस्त प्राणियों तथा पादपों के जीवन का आधार है। इसीलिए, जल को जीवन कहा गया है। जीवों में समस्त जैविक क्रियाएं जल की उपस्थिति में होती हैं। दैनिक जीवन में जल का उपयोग विविध रूपों में होता है। विश्व में जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि कार्यों में होता है। इसके अतिरिक्त उद्योगों में जल का उपयोग बड़ी मात्रा में होता है। कृषि व उद्योग के पश्चात् जल का सर्वाधिक उपयोग मानव द्वारा घरेलू कार्यों में किया जाता है। प्रतिदिन पीने, नहाने, भोजन पकाने तथा साफ-सफाई के लिए बड़ी मात्रा में जल का उपयोग किया जाता है। मवेशियों तथा घरेलू बगीचों के लिए जल की आवश्यकता होती है। मत्स्य उद्योग तथा जल-परिवहन के लिए भी जल का उपयोग महत्वपूर्ण है। जल विद्युत् ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है।

वैकल्पिक ऊर्जा का नव्यकरणीय संसाधन सौर ऊर्जा, जिसका उपयोग सोलर कुकर, सोलर वाटर हीटर, सौर हरित गृह, सौर तापन विद्युत् प्रकाश आदि में किया जाता है। सामान्य स्वामित्व संसाधन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसके अतिरिक्त पवन ऊर्जा, बायो गैस, बायोमास ऊर्जा वैकल्पिक नव्यकरण ऊर्जा के स्रोत सामान्य स्वामित्व वाले संसाधन हैं।

इस तरह, सामान्य स्वामित्व संसाधनों के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं :

1. सामान्य स्वामित्व संसाधनों के सन्दर्भ में अपवर्जन सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता।
2. इनसे समाज के सभी व्यक्तियों को समान लाभ प्राप्त होता है।
3. समान स्वामित्व वाले संसाधनों की सुगम एवं सार्व उपलब्धता के सम्बन्ध में बजटीय प्रावधान किया जा सकता है।